मंगल परिणय

- राजकुमार, द्रोणगिरि

समर्पण द्वारा प्रकाशित अन्य साहित्य

₹ 20/- ₹ 15/- ₹ 20/- ₹ 20/- ₹ 25/-

₹ 50/- ₹ 20/- ₹ 25/- ₹ 125/- ₹ 125/-

राजकुमार शास्त्री द्वारा लिखित साहित्य

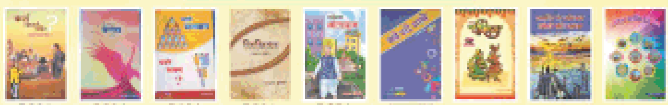

₹ 20/- ₹ 20/- ₹ 10/- ₹ 20/- ₹ 25/- अनुपलब्ध

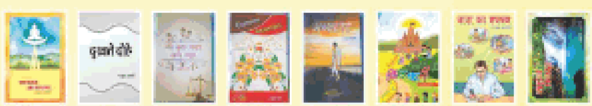

₹ 25/- ₹ 5/- ₹ 20/- ₹ 15/- ₹ 30/- ₹ 20/- ₹ 25/-

समर्पण का मासिक प्रकाशन संस्कार सुधा

श्रीराम - नन्दिनी ग्रंथमाला

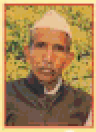

स्व. श्री रामलाल जैन, द्रोणगिरि

श्रीमती नन्दिनीबाई जैन, द्रोणगिरि

मंगल परिणय

– राजकुमार जैन
द्रोणगिरि

जिसप्रकार मित्रता समान विचारों के साथ ही फलदायी और दीर्घकालीन होती है, उसी प्रकार पति–पत्नी का रिश्ता भी सच्चे मित्र की कोटि में ही आता है अतः सर्वप्रथम तो जहाँ वैचारिक समानता हो वहाँ पर ही संबंध तय करना चाहिये।

– **इसी पुस्तक से**

समर्पण चेरिटेबल ट्रस्ट का 26 वाँ पुष्प
रामनन्दिनी ग्रंथमाला का 12 वाँ पुष्प

मंगल-परिणय

लेखक

राजकुमार जैन, द्रोणगिरि

प्रकाशक

समर्पण

18, आदिनाथ कॉलोनी, केशवनगर, उदयपुर (राज.)

मो. 91 9414103492

प्रथम संस्करण : 1000 प्रतियाँ
[**अगम जैन संग निष्ठा जैन** के मंगल परिणय प्रसंग
2 दिसम्बर 2018 के अवसर पर प्रकाशित]
द्वितीय संस्करण : 1000 प्रतियाँ [........]

प्राप्ति स्थान : **शाश्वतधाम, उदयपुर (राज.),**
मो. 91-9414103492
: **श्री अमित जैन डीटीडीसी, दिल्ली**
मो. 91-9811393356
: **श्री दिनेश शास्त्री, जयपुर**
मो. 91-9928517346

साहित्य प्रकाशन हेतु सहयोग राशि : 15/- रुपये

मुद्रक : देशना (दिनेश) कम्प्यूटर्स
मालवीया इण्डस्ट्रियल एरिया, जयपुर
मो. 9928517346

प्रस्तुत प्रकाशन में सहयोग करने वाले महानुभाव

1.	विद्या-सागर जैन, उदयपुर	**1100/-**
2.	श्री नेमिचंद चंपालाल भोरावत चेरीटेबल ट्रस्ट, उदयपुर	**1100/-**

विषयानुक्रमणिका

क्र.	**विषय**	**पृष्ठ**
1.	मंगल-परिणय	9-12
2.	विवाह क्या ?	13-33
3.	वैवाहिक कार्यक्रमों में फैलती विकृतियाँ	34-40
4.	'मंगल-परिणय' और हमारे कर्त्तव्य	41-49
5.	परिशिष्ट	50-52

प्रकाशकीय

अभी तक '**समर्पण**' द्वारा प्रकाशित साहित्य पाठकों के बीच भरपूर पसन्द किया गया। एतदर्थ लेखकों/पाठकों/अर्थ सहयोगियों को हार्दिक धन्यवाद।

'**समर्पण**' द्वारा प्रकाशित साहित्य के प्रकाशन सहयोग हेतु पाठकों द्वारा अधिकांश अर्थ सहयोग पहले ही प्राप्त हो जाता है, अत: अधिकतर साहित्य '**जो चाहो ले जाओ, जो चाहो दे जाओ**' के आधार पर जाता है। अनेक साधर्मी अधिक संख्या में साहित्य लेते हैं तो सहयोग राशि भी प्रदान करते हैं, वह राशि जिन प्रकाशनों में सहयोग कम आता है, उनके प्रकाशन में व्यय हो जाता है।

चार वर्ष की अल्पावधि में 25 पुष्प प्रकाशित होना एवं उनका समाप्त होना हमारे लिए एक बहुत बड़ी उपलब्धि है।

'**समर्पण**' के 26वें पुष्प के रूप में राजकुमार शास्त्री द्वारा लिखित '**मंगल परिणय**' पुस्तिका के द्वितीय संस्करण का प्रकाशन करते हुए हम प्रसन्नता का अनुभव कर रहे हैं। लेखक ने इस पुस्तिका के माध्यम से परिणय/विवाह के संबंध में महत्त्वपूर्ण तथ्य प्रस्तुत किये हैं जो सभी के द्वारा पठनीय/मननीय/अनुकरणीय हैं।

पुस्तक के आकर्षक मुद्रण हेतु श्री दिनेश जैन-देशना कम्प्यूटर्स जयपुर को भी साधुवाद देते हैं, जो कम समय में हमारी इच्छानुसार प्रकाशन में सहयोग प्रदान करते हैं।

आप पुस्तक पढ़कर जो भी आपके भाव हों, वह 9414103492 पर अवश्य ही सूचित करें। धन्यवाद।

निवेदक :

'समर्पण' चैरिटेबल ट्रस्ट, उदयपुर

मो. 9511330455, 9414103492

मन की बात

कोई भी ऐसा परिवार नहीं होगा, जहाँ किसी का '**मंगल- परिणय**' न हुआ हो, पर उस परिणय में मंगल कितना हुआ इसे तो वह स्वयं या सर्वज्ञ भगवान ही जान सकते हैं।

जब मंगल परिणय हुआ तो मंगल क्यों नहीं हुआ? शुभ विवाह हुआ तो जीवन में शुभ क्यों नहीं हो रहा ? इसके पीछे यही कारण है कि परिणय या विवाह के पीछे जो मंगल या शुभकारक भावना है, उसका हमें परिज्ञान नहीं है, हम मात्र परंपरा की पूर्ति हेतु ही विवाह के धार्मिक विधि-विधानों का अनुसरण करते हैं, न तो उनका हमें सही ज्ञान होता है, न ही उनके प्रति हमारा श्रद्धाभाव और न ही तदनुसार अनुसरण करने का भाव।

इसके पीछे भौतिकता/भोगवादी संस्कृति/प्रमाद आदि अनेक कारण हैं, उनमें ही एक कारण जो भावनायें हमारे जीवन में मंगल और शुभंकर हैं, उन भावनाओं की जानकारी देने वाले साधन उपलब्ध न होना भी है।

वर्तमान में वैवाहिक कार्यक्रमों में विकृतियाँ भी बहुत आती जा रही हैं। दिखावट/सजावट/बनावट अर्थात् प्रदर्शन के पीछे हम अपनी संस्कृति का नाश कर रहे हैं।

भाई पीयूष शास्त्री जयपुर ने दिनांक 10/10/18 को अचानक ही दूरभाष पर मुझसे कहा कि भाई साहब आप अगम जैन के विवाह के अवसर पर कोई छोटी-सी पुस्तिका लिखें, जिसमें विवाह के सात्त्विक स्वरूप, विवाह पद्धति की उपयोगिता आदि पर चर्चा हो। इस मंतव्य का सहधर्मिणी डॉ. ममता जैन ने भी समर्थन किया।

मुझे यह सुझाव अच्छा लगा और मैंने तुरन्त ही पुस्तकालय से

महापुराण, हरिवंश पुराण, जैनेन्द्र सिद्धान्त कोश, सागार धर्मामृत ग्रन्थ लेकर आवश्यक प्रकरणों को देखा, साथ ही डॉ. स्वर्णलता जैन द्वारा संकलित व डॉ. राकेश जैन नागपुर द्वारा संपादित शुभ विवाह क्या, क्यों और कैसे ? की पीडीएफ भाई संयम जैन से प्राप्त कर उसका भी अवलोकन किया (यह पुस्तक भी सभी को पठनीय है)।

उक्त ग्रन्थ/पुस्तकों में से प्रासंगिक सामग्री का अध्ययन कर अपने ढ़ंग से यहाँ पर परिणय की मांगलिकता, उसमें आती विकृतियाँ और हमारे कर्त्तव्यों पर कुछ लिखने का प्रयास किया है। पुस्तक प्रकाशन के पूर्व अनेक वरिष्ठ विद्वज्जनों व पाठकों ने विशेष कर डॉ. सुदीपजी जैन दिल्ली, डॉ. राकेशकुमार जैन नागपुर, ब्र. हेमचन्दजी 'हेम' देवलाली, संयम शास्त्री भोपाल ने मार्गदर्शन/अनुमोदन प्रदान किया तदर्थ उनके प्रति कृतज्ञता ज्ञापित करता हूँ।

समयाभाव और बुद्धि की कमी से कुछ त्रुटियाँ भी संभाव्य हैं अत: क्षमायाचना करते हुये परिमार्जन हेतु आवश्यक सुझावों की अपेक्षा है, जिनका उपयोग हम अगले संस्करण में करके इसे अधिक उपयोगी बनाने का प्रयास कर सकते हैं।

पुस्तिका में संक्षेप में ही भावनात्मक विषयवस्तु को प्रस्तुत किया गया है। विशेष जानकारी हेतु आचार्यों/विद्वानों द्वारा लिखित ग्रन्थों/पुस्तकों की अध्ययन करना चाहिये। **– राजकुमार, द्रोणगिरि**

मात-पिता संतान को, दें मोबाइल कार।
लौकिक बहु शिक्षायें दें, देते नहीं संस्कार।।
संस्कार जैनत्व के, सुत को देते नाहिं।
खाना-पीना, रात-दिन, फिरें होटलों माहिं।।

समर्पण चैरिटेबल ट्रस्ट : एक परिचय

देव-धर्म-गुरु के चरणों में तन-मन-धन सब अर्पण।
आतमहित व तत्त्वज्ञान को, है सर्वस्व समर्पण।।

ÅþÀU ¤eÙæ - समर्पण चैरिटेबल ट्रस्ट **स्थापना तिथि** – 20 सितम्बर 2014

ट्रस्ट मण्डल –

संरक्षक – 1. श्री अजित जैन बड़ौदा, 2. श्री कन्हैयालाल दलावत, 3. श्री ताराचन्द जैन उदयपुर, 4. श्री प्रकाशचन्द छाबड़ा सूरत, 5. श्री ललितकुमार किकावत लूणदा।

अध्यक्ष – राजकुमार शास्त्री उदयपुर, **उपाध्यक्ष** – अजितकुमार शास्त्री अलवर, **कोषाध्यक्ष** – रमेशचन्द वालावत उदयपुर, **मंत्री** – डॉ. ममता जैन उदयपुर, **सहमंत्री** – पीयूष शास्त्री जयपुर, **ट्रस्टी** – पण्डित अशोकुमार लुहाड़िया तीर्थधाम मंगलायतन अलीगढ़, ऋषभकुमार शास्त्री छिन्दवाड़ा, डॉ. महेश जैन भोपाल, रतनचन्द शास्त्री कोटा, सुनील जैन छतरपुर, गणतंत्र ओजस्वी आगरा।

ट्रस्ट की सामान्य रूपरेखा

उद्देश्य – 1. तत्त्वज्ञान, अहिंसा, शाकाहार, सदाचार का प्रचार करना। 2. सामाजिक विकृतियों के विरुद्ध जागरुकता पैदा करना। 3. अनुपलब्ध, आवश्यक व नये लेखकों का श्रेष्ठ साहित्य प्रकाशित करना। 4. सर्वोपयोगी पत्रिका प्रकाशित करना। 5. चिकित्सा व शिक्षा के क्षेत्र में प्राप्त सहयोग को वितरित करना।

कार्य पद्धति – 1. सबसे सहयोग-सबको सहयोग की भावना से साधर्मियों से प्राप्त सहयोग साहित्य/चिकित्सा/शिक्षा पर आवश्यकतानुसार वितरित करना। हमारा प्रयास होगा कि फण्ड बनाने की अपेक्षा प्रतिवर्ष प्राप्त सहयोग को उसी वर्ष वितरित कर दिया जाये। 2. व्यक्ति या संस्था के नाम के लिए नहीं, पर काम के लिए काम। 3. सर्वोपयोगी (अपनी समझ के अनुसार) योजना को सबके समक्ष रखना, यदि सहयोग प्राप्त हुआ हो तो उस योजना/कार्य को करना, नहीं तो..... ? 3. अच्छी बातें-सच्ची बातें (अर्थात् शाश्वत सत्य) ज्यादातर लोगों तक पहुँचे, ऐसा प्रयास करना।

गतिविधि – 1. साहित्य प्रकाशन, 2. **संस्कार सुधा** मासिक पत्रिका का प्रकाशन, 3. **स्नातकों द्वारा स्नातकों के लिए शिक्षा चिकित्सा सहायता योजना,** 4. साधर्मी वात्सल्य योजना – साधर्मियों से स्वैच्छिक सहयोग लेकर योग्य साधर्मियों को शिक्षा/चिकित्सा सहयोग पहुँचाना।

निवेदक : **समस्त ट्रस्ट मण्डल, समर्पण चेरीटेबल ट्रस्ट, उदयपुर (राजस्थान)**

मंगल-परिणय

प्रासंगिक

सामाजिक/पारिवारिक जीवन में परिणय या विवाह एक आवश्यक क्रिया है, जो कि अनादिकाल से ही चली आ रही है। जिन विधि-विधानों/क्रियाओं/परंपराओं/दस्तूरों द्वारा आज विवाह सम्पन्न हो रहे हैं, उसी तरह से अनादि से हो रहे हैं यह तो नहीं कहा जा सकता, क्योंकि वर्तमान में भी सभी जगह एक जैसी पद्धति/परंपरा नहीं है, परन्तु इतना अवश्य कहा जा सकता है कि विवाह में गर्भित भावनायें अवश्य ही सर्वत्र व सर्वदा यही रही होंगी। उनको व्यक्त करने की भाषा-शैली में तो बदलाव होता ही रहा है, होता ही रहेगा।

परिवार में परिणय ही एक ऐसा कार्यक्रम है, जिसका परिवार के प्रत्येक सदस्य को इन्तजार रहता है और परिवार में जिसका भी विवाह होता है, वह तो जीवनसाथी के मिलने, जीवनपथ पर नई दिशा/दशा पाने, सुख-दुख का सहभागी मिलने के कारण प्रसन्न होता ही है, पर परिवार का प्रत्येक सदस्य भी बहू/भाभी/चाची या दामाद/बहनोई आदि के रूप में मिलने के कारण घर में उल्लास/सक्रियता/प्रसन्नता/हास्य आदि सर्वाधिक होता है।

विवाह के संबंध में हर किसी के अपने-अपने दृष्टिकोण हो सकते हैं परन्तु इस संबंध में आगमानुकूल क्या दृष्टिकोण है या एक सुसंस्कारित समाज के दृष्टिकोण से क्या भावनायें/ क्रियायें उचित हैं, जिनसे कि परिणय 'मंगल-परिणय' विवाह 'शुभ-विवाह' कहलाता है, वह यहाँ विचारणीय है।

कहीं भी गली मुहल्ले में घूमने निकलता हूँ तो कोई भी, कभी भी विवाहित व्यक्ति अपने लिए या अपने विवाहित मित्रों को देखकर मुस्कराकर गाते हुये मिल जाता है –

''जब से हुई है शादी, आँसू बहा रहा हूँ।
आफत गले पड़ी है, उसको निभा रहा हूँ।।''

संयोग से पत्नी आसपास हो तब तो उसकी ओर इशारा करके और जोर से तान तोड़/कान फोड़ तानसेन बनकर बिना फरमाइश के ही बार-बार गाने लगते हैं, और संकोची भारतीय महिला दुखित होकर रह जाती हैं या आधुनिक महिला 'अच्छा तो मैं आफत हूँ' कि हुंकार भरती है तो पतिदेव बिना वाहन के ही पलायन कर जाते हैं।

या फिर कुछ मनचले युवक गाते हुये मिल जायेंगे –

''सुनो राजा शादी लड्डू मोतीचूर का,
जो खाये पछताये, न खाये पछताये।।''

इन महाशयों की दृष्टि में विवाह उस लड्डू की तरह है, जो खाने पर भी पछतावा होता है और न खायें तो भी पछतावा होता है। जब दोनों ही परिस्थितियों में पछताना ही है तो सब समझदारी का परिचय देते हुये लड्डू खाकर ही पछताते हैं।

दूसरी ओर मंदिर, स्वाध्याय भवन, चौराहा या टेलीविजन कहीं भी, किसी का भी प्रवचन सुनने को मिल जाये तो उसमें यही कहा जाता है – ''संसारवर्धक, संसार के सर्व दुःखों का कारण, पराधीनता में डालने वाला, स्वतंत्रता छीनने वाला, विवाह

बंधन ही है। 'परिणय' परिभ्रमण का कारण है। यदि स्वतंत्रतापूर्वक सुखमय जीवन जीना चाहते हो, सर्व पापों से बचना चाहते हो तो भाइयो-बहिनो इस वैवाहिक बंधन में नहीं फँसना। इस विवाह के चक्कर में पड़कर हाथी जैसे बलधारी, बकरी की तरह शक्तिहीन हो जाते हैं। 'नोंन तेल लकड़ी के जाल में फँस गई मकड़ी' की यह पुरानी कहावत समझदारों ने हमें सावधान रखने के लिए ही कही है।''

तीसरी ओर घर पर हमारे नजदीकी बंधु अपने सुपुत्र-सुपुत्रियों के परिणय के बहुमूल्य आमंत्रण-पत्र लेकर आते हैं, जिनमें लिखा होता है – 'हमारे पुण्योदय/भाग्य/भगवान की कृपा से हमारे सुपुत्र-सुपुत्री का शुभ-विवाह आनंदमय वातावरण में सम्पन्न होने जा रहा है, जिसमें आपकी उपस्थिति सादर प्रार्थनीय है।'

यहाँ यह विचारणीय है कि यदि विवाह के पश्चात् आँसू ही बहाना होते हैं या गले में आफत पड़ जाती है या वैवाहिक संबंध संसार का कारण, दुखद है, पाप है, त्याज्य है तो फिर इसे 'शुभ विवाह' क्यों लिखा/कहा जा रहा है। और यदि विवाह शुभ है, परिजनों के आनंद का कारण है तो फिर उसे पापमय क्यों कहा जा रहा है ? यदि विवाह पापमय या आफत स्वरूप है तो महापुरुषों ने भी विवाह क्यों किये ? और यदि विवाह शुभ है, सुखद है तो महापुरुषों ने वैवाहिक संबंधों का त्याग क्यों किया ?

सर्वप्रथम तो यह समझना आवश्यक है कि जो युवा वर्ग यह गाते फिर रहे हैं कि 'आफत गले पड़ी है' सच में तो वह अपने आप को महापुरुष/सत्पुरुष/भद्रपुरुष/कर्तव्यनिष्ठ होने का भ्रम रखते

हुये, महिलाओं को अपने अधीनस्थ मानकर उनको अपमानित करने, उनका मजाक उड़ाने का अधिकार माने हुये हैं या विवाह होने से उनकी स्वच्छंदता पर पाबंदी लगने लगी है और सहधर्मी की जिम्मेदारियों से बचना चाह रहे हैं, अतः उसे (धर्मपत्नी को) 'आफत' संबोधित कर रहे हैं (जो भारतीय संस्कृति की दृष्टि से सर्वथा अनुचित है), जबकि सत्य तो यह है कि गाना गाने वाले भी पत्नी के बिना घर में अकेलापन अनुभव करते हैं तथा हर कदम पर पत्नी के साथ की अपेक्षा रखते हैं, जिससे सिद्ध होता है कि विवाह इनके जीवन में भी अनिवार्य था और सुखद भी है।

दूसरी ओर विवाह को पापमय या पाप का कारण कहने का हेतु भी यही समझ में आता है कि जिन भावनाओं के साथ आगम में भी विवाह करने का निर्देश दिया है, तीर्थंकर आदि महापुरुषों ने भी विवाह किया है और विवाह के अवसर पर गृहस्थाचार्य द्वारा जो भावनायें/संकल्प दिये जाते हैं, जिनके कारण शुभ-विवाह या मंगल-परिणय कहा जाता है, उनका आंशिकरूप से भी पालन वर्तमान जीवन में दिखाई नहीं देता, मात्र विषय-पोषण, स्वेच्छाचार ही दिखाई देता है। साथ ही जिसप्रकार से हास्य व उपेक्षा के वातावरण में धार्मिक विधि-विधानों, परंपराओं से विवाह सम्पन्न हो रहे हैं, उस ढंग से तो शुभ-विवाह लिखे हुये होने पर भी जीवन में सर्वथा अशुभ ही हो तो कोई आश्चर्य नहीं होना चाहिये।

देव-धर्म के ज्ञान बिन, मन भटके चहुँ ओर।
धर्म पंथ चलते नहीं, केवल धन की दौड़।।

विवाह क्या ?

विवाह शब्द संस्कृत भाषा का शब्द है जो 'वि' उपसर्ग पूर्वक 'वह्' धातु से घञ् प्रत्यय करने पर बनता है। इसे हम 'वि–वाह' इन दो शब्दों के रूप में भी समझ सकते हैं, इसके अनुसार 'विवाह' का भाव होगा–विशेषरूप से उत्तरदायित्व का वहन करना अर्थात वैवाहिक संबंध हो जाने पर दो युवा–युवती एक विशेष प्रकार के उत्तरदायित्व को वहन करने के योग्य हो गये हैं। जो अभी तक स्वतंत्ररूप से विचरण कर रहे थे, वे अब मात्र एक–दूसरे के सुख–दु:ख के सहभागी नहीं हैं, अपितु परिवार–समाज–देश के प्रति भी उत्तरदायी हो गये हैं।

जिस प्रकार लोक में कहा जाता है कि पति–पत्नी एक गाड़ी के दो पहिये की तरह हैं, जो मिलकर परिवार/समाजरूपी गाड़ी को लक्ष्य तक पहुँचाते हैं। तदनुसार ही विवाह होने पर 'पति–पत्नी' सांसारिक दायित्वों का निर्वहन करते हुये, धर्ममार्ग का भी अनुसरण करेंगे, एक–दूसरे को सन्मार्ग पर चलने हेतु प्रेरित करेंगे, सुख–दु:ख में साथ देंगे, इसतरह लौकिक व लोकोत्तर मार्ग में सहभागी बनेंगे। यही इस विवाह नामक संस्था का गंभीर भाव है।

आचार्य अकलंकदेव ने **तत्त्वार्थ राजवार्तिक** में 'साता–वेदनीय और चारित्रमोहनीय के उदय से विवहन अर्थात् कन्यावरण करने को '**विवाह**' कहा है।

विवाह के अन्य नाम

विवाह को ही उद्वाह, परिणय, पाणिग्रहण और शादी, आदि नामों से जाना जाता है।

विवाह क्यों ?

कवि पुष्पदंत महापुराण में युवराज ऋषभदेव के विवाह के प्रसंग में लिखते हैं। महाराजा नाभिराय युवराज ऋषभदेव से कहते हैं –

'किज्जइ विवाहु सुकुमार तुहं जेण पवड्ढइ लोयगइ।'

'हे सुकुमार! विवाह कीजिये, जिससे लोक की गति बढ़ सके।'

इस तरह सिद्ध होता है कि सांसारिक/सामाजिक परंपरा को आगे बढ़ाने के निमित्त विवाह किया जाता है, इसी को लक्ष्य में लेकर महापुरुषों ने भी विवाह किया है।

विवाह के उद्देश्य

'संस्कार मंजूषा' पुस्तक में विवाह के निम्नलिखित सात उद्देश्य बतलाये गये हैं –

1. मन में उत्पन्न वासना को धीरे-धीरे शान्त करना।
2. स्वदार सन्तोष व्रत का पालन करना।
3. सामाजिकता को अक्षुण्ण बनाये रखते हुये, दुराचार से दूर रहकर वैषयिक सुख प्राप्त करना।
4. मनुष्य एक सामाजिक प्राणी होने के नाते जीवन का अकेलापन मिटाना।
5. सुचारु ढंग से भोजन-पानी आदि की व्यवस्था बनाना।
6. जीवन भर के लिए सुख-दुःख में सहयोग करनेवाला स्थाई साथी प्राप्त करना।
7. अपनी कुल-परम्परा अथवा मनुष्य-जाति को आगे बढ़ाना।

सागार-धर्मामृत में आशाधरजी कहते हैं -

धर्मसन्तितमक्लिष्टां रतिं वृत्तकुलोन्नतिम्।
देवादिसत्कृतिं चेच्छन्सत्कन्यां यत्नतो वहेत्।।11/60।।

धार्मिक सन्तान को जन्म देने या धर्म की परम्परा चालू रखने, बिना किसी प्रकार की बाधा के रति करने व चारित्र और कुल की उन्नति तथा देव, द्विज और अतिथि का सत्कार करने के इच्छुक श्रावक को सज्जन की सत्कन्या को तत्परता के साथ विवाहना चाहिए।''

विवाह विधि

श्री सरल जैन विवाह-विधि में निम्न दो छन्दों के माध्यम से विवाह-विधि को प्रदर्शित किया गया है -

वाग्दानं च प्रदानं च, वरण-पाणिपीडनम्।
सप्तपदीति पंचांगो, विवाहः परिकीर्तितः।।
तावद्विवाहो नैव, स्याद्यावत्सप्तपदी न चेत्।
तस्मात्सप्तपदी कार्या, विवाहे मुनिभिः स्मृता।।

अर्थात् जिसमें वाग्दान (सगाई), प्रदान (कन्यादान), वरण (कन्या का स्वीकरण), पाणिपीडन (हथलेवा) और सप्तपदी (सप्त वचनों की स्वीकृतिपूर्वक सात भाँवर) - ये पाँच कार्य हों, वही **विवाह** है। जब तक सप्तपदी नहीं होती, तब तक विवाह हुआ नहीं कहा जा सकता; अतएव जब तक सप्तपदी न हो, तब तक कन्या को अधिकार है कि वह उचित न जँचने पर अपना **विवाह**, उस वर के साथ नहीं करावें।

विशेष - विवाह विधि के समय 'कन्या दान' की विधि होती है, जो माता-पिता के लिए सबसे अधिक भावातिरेक का क्षण होता है।

इस प्रसंग में यह ध्यान रखने योग्य है कि कन्या कोई अचेतन वस्तु नहीं है, जिस पर किसी का अधिकार हो और वह किसी को स्वेच्छा से दान कर सकता हो। यहाँ पर इस विधि का मार्मिक भाव यह है कि माता-पिता के लिए कन्या 'अनमोल रत्न' है, उसके प्रति सबका बहुत प्रेम है अतः उसके सुख/सुविधा/सुरक्षा/उज्ज्वल भविष्य को ध्यान में रखते हुए योग्य वर (वर का अर्थ भी श्रेष्ठ होता है) खोजकर उनका 'परिणय' कराते हैं, इसे ही कन्यादान की विधि कहते हैं। सच में तो न कन्या दान की वस्तु है, न ही परिणय कराना दान है।

विवाह विधि का उद्देश्य

पण्डित अभयकुमार शास्त्री जैन विवाह विधि-विधान पुस्तक में विवाह-विधि का उद्देश्य बतलाते हुये लिखते हैं -

''मनुष्य जन्म की सार्थकता सम्यग्दर्शन प्राप्त कर पाँचों पापों का त्याग करके महाव्रत धारण करके मुक्ति की साधना करने में है। पुरुषार्थ की कमजोरी के कारण जीव महाव्रत अंगीकार नहीं कर पाता, अतः जिनागम में अणुव्रत अंगीकार करने का उपदेश दिया गया है।

यद्यपि परस्त्रीत्याग तथा स्वस्त्रीसन्तोष पूर्णजीवन अणुव्रती श्रावक की जीवन पद्धति में आता है तथापि अणुव्रत व सम्यग्दर्शन के पूर्व भी सामाजिक मर्यादाओं के अनुसार स्वदारसन्तोषपूर्वक

गृहस्थ जीवन व्यतीत करना आवश्यक है। परस्त्री सेवन को सप्त व्यसन में सम्मिलित किया गया है, राजदण्ड, समाजदण्ड तथा नरकादि कुगतियों का कारण है। अतः सदाचरण पूर्वक वंश परंपरा को चलाने के लिये शास्त्रोक्त विधि से देव-शास्त्र-गुरु की साक्षी से वरण, पाणिग्रहण तथा सप्तपदी पूर्वक विवाह की परंपरा है।''

लौकिक दृष्टि से विवाह की उपयोगिता

लोक में जब पुत्र-पुत्री वयस्क होकर स्वतंत्रता के स्थान पर स्वच्छंद होने लगते हैं या माता-पिता की आज्ञा नहीं मानते हैं, व्यापारादि कार्य करने में आलस्य करते हैं, तब समझदार माता-पिता निर्णय करते हैं कि अब कैसे भी पुत्र का शीघ्रता से विवाह कर देना चाहिये। विवाह होने पर जब जिम्मेदारी आयेगी, विचारों के आदान-प्रदान करने के लिए सन्मित्र के रूप में पति-पत्नी हो जायेंगे तो उनके जीवन में निश्चित ही नियमितता व जिम्मेदारी आ जायेगी। वे जानते हैं कि बहुत-सी बातें बातों से नहीं स्वयं के अनुभव से सीखते हैं। इस तरह विवाह व्यक्ति को जिम्मेदार, नियमित, कर्तव्यनिष्ठ बनाने, बिगड़े हुये को सुधारने व कुल परम्परा को बढ़ाने का माध्यम भी लोक में माना जाता है।

धार्मिक दृष्टि से विवाह की उपयोगिता

आगम में भी विवाह के द्वारा हमारे भ्रम को मिटानेरूप उत्कृष्ट या मनोवैज्ञानिक फल बतलाते हुये आशाधरजी लिखते हैं -

''विषयेषु सुखभ्रान्तिं कर्माभिसुखपाकजाम्।
छित्वा तदुपभोगेन त्याजयेत्तान् स्ववत्परम्।।11/62

विशेषार्थ - चारित्रमोह के उदय से पीड़ित मनुष्य को विषय

सेवन अच्छा लगता है। वह मानता है कि विषय में सुख है। उसका यह भ्रम दूर करने का उपाय है कि उसका विवाह करा दिया जाये। इससे वह विषयों से विमुख होकर दूसरों की भी भ्रन्ति दूर करने का प्रयत्न करेगा।''

पाणि-ग्रहण में भी त्याग गर्भित है

विवाह को पाणिग्रहण भी कहा जाता है क्योंकि इस अवसर पर दो अपरिचित व्यक्ति धर्म-मार्ग पर चलते हुये सुख-दु:ख में सहभागी बनने के संकल्प/भावनापूर्वक एक दूसरे का पाणिग्रहण करते हैं। इस पाणिग्रहण में अन्य किसी स्त्री-पुरुष का अब पाणिग्रहण/संग नहीं करेंगे अर्थात् अब पति-पत्नी के रूप में या रतिभावना पूर्वक अन्य किसी से संपर्क स्थापित नहीं करेंगे की भावना होने से एकदेश ब्रह्मचर्य व्रत का भी ग्रहण हो जाता है अर्थात् अन्य सभी के प्रति के अनाचार युक्त रागभाव का त्याग हो जाता है। वास्तव में इस त्याग भावना के कारण ही 'शुभ-विवाह' नाम सार्थक होता है।

विवाह योग्य स्थान

विवाह हेतु स्थान कैसा होना चाहिये इस संबंध में संयम शास्त्री ज्ञानोदय भोपाल के विचार दृष्टव्य हैं -

''विवाह को 'शुभ विवाह' कहने के पीछे अनेक कारण हो सकते हैं किन्तु उन कारणों में से कुछ कारण तो ऐसे हैं जिनमें परिणामों की स्थिरता पर जोर दिया जाता है (स्वदारसन्तोष व्रत), कुछ कारण ऐसे हैं जिनमें विवाह की क्रिया, शुभ होने से, उसे शुभ विवाह कहा जाता है (धार्मिक मंत्र-तंत्र); किन्तु एक

और बहुत प्रबल आयाम है कि उस विवाह का स्थान भी अत्यंत शुभ होने से हम उसे 'शुभ-विवाह' कहते हैं।

पद्मपुराण, हरिवंशपुराण, आदिपुराण आदि अनेक पुराणों में विवाह के प्रत्येक प्रसंग में हमें यह पढ़ने को मिलता है कि ये सभी विवाह मन्दिर में या मन्दिर के समीपस्थ स्थानों में किए जाते रहे हैं किन्तु यदि आज की परिस्थिति में देखा जाए तो इसका स्थान समुचित प्रतीत नहीं होता।

आज विवाह को शुभ कहना एक हंसी ठिठोली से अधिक और कुछ नहीं है किन्तु इसकी वास्तविकता के बारे में विचार किया जाए तो यह एक बहुत मार्मिक एवं सामाजिक परिपाटी है जिसमें जीव को अपनी कषायों को सीमित करके जीवन को एक सही रास्ते पर चलाने के लिए प्रेरणा का कार्य करता है।

या तो एक व्यक्ति दूसरे व्यक्ति को सही रास्ते पर चलने के लिए प्रेरित करता है अन्यथा दोनों एक दूसरे के स्थितिकरण का साधन बनकर उन्हें धर्म मार्ग में आगे बढ़ने का समुचित अवसर प्रदान करते हैं।

खैर! इस जागरूकता की अत्यावश्यकता है कि हम कैसे स्थान को विवाह के लिए उचित करार देते हैं?

बैचलर्स पार्टी, पैसों की बर्बादी, मनोरंजन हेतु सट्टेबाजी, ब्राइड्स मेड, बेस्ट मैन आदि के नाम पर अनेक कुप्रथाओं को एवं राग-द्वेष की अत्याधिकता सम्बन्धी क्रियाओं के माध्यम से सभी वासनाओं की पूर्ति करने का स्थान बनाना इस शुभ विवाह के नाम पर प्रश्नचिह्न है।

किसी भी व्यक्ति की चाहे वह बाराती हो, दूल्हा हो, दुल्हन हो या कोई अन्य भी हो, वासना की पूर्ति के लिए कोई भी स्थान चुनना उपयुक्त नहीं है।

यदि आज हमें मंदिरों या मंदिरों के समीपस्थ स्थान उचित नहीं प्रतीत होते तो ऐसा स्थान तो चुनना ही चाहिए जिससे द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव सभी के शुभत्व का प्रयास किया जा सके।''

विवाह किससे ?

विवाह किससे किया जाये या माता-पिता अपनी कन्या या पुत्र का विवाह किसके साथ सुनिश्चित करें ?

जिसप्रकार मित्रता समान विचारों के साथ ही फलदायी और दीर्घकालीन होती है, उसी प्रकार पति-पत्नी का रिश्ता भी सच्चे मित्र की कोटि में ही आता है अत: सर्वप्रथम तो जहाँ वैचारिक समानता हो वहाँ पर ही संबंध तय करना चाहिये।

पण्डित आशाधरजी सागारधर्मामृत में कहते हैं -

''कन्यादान के योग्य वही पात्र होता है, जो अपना सधर्मा हो अर्थात् जिसका धर्म-क्रिया-मन्त्र-व्रत वगैरह अपने समान हो...यदि कन्या विधर्मी के कुल में जाती है तो उसके व्रत, नियम देवपूजा, पात्रदान आदि सब छूट जाते हैं। इस तरह से उसका धर्म ही छूट जाता है। इसलिए कन्या साधर्मी को ही देना चाहिए। धर्म के सामने ऐश्वर्य तुच्छ है। धर्म के रहने से वह भी मिल जाता है और धर्म के अभाव में प्राप्त भोग भी नष्ट हो जाते हैं।''

वर-वधु के पिता का रिश्ता परस्पर में 'सम-धी' नाम से संबोधित किया जाता है, यह रिश्ता भी इस बात को सिद्ध कर

रहा है कि जहाँ समान बुद्धि हो वहाँ पर ही रिश्ता किया जाये।

जहाँ रूप/धन/पद देखकर संबंध/रिश्ते स्थापित होते हैं और विचारों को गौण कर दिया जाता है वहाँ कालान्तर में रिश्तों में निश्चित ही खटास पैदा हो जाती है क्योंकि रूप/धन/पद तो पुण्याधीन है, उदय बदलते ही यह सब बदल जाते हैं, जिससे संबंध भी टूटने की कगार पर आ जाते हैं।

हमें लौकिक/व्यावसायिक/सामाजिक विचारों की दृष्टि से समानता यथासंभव देखना ही चाहिये, परन्तु धार्मिक विचारों की दृष्टि से तो सदैव जागरूक रहकर ध्यान देना ही चाहिये। कदाचित् रूप/धन/पद/व्यवसाय में कुछ कमी भी हो तो धार्मिक विचारों में समानता होने से इस लोक में शांति से जीवन जीते हुये परलोक को सुरक्षित किया जा सकता है, परन्तु अन्य सब कुछ होते हुये भी वीतरागतारूप धर्म का अवलंबन प्राप्त नहीं हुआ तो यह जीवन तो मिथ्यात्व के पोषण में जायेगा ही और मिथ्यात्व के फल में न जाने कितने भव दुःखमय बीतेंगे, जिसकी कल्पना मात्र भी दुखद है।

मैना सुन्दरी का विवाह कुष्ठ रोगी से हुआ परन्तु वह सधर्मा थे तो कालान्तर में राजपद भी मिल गया और मुक्ति पद भी मिल जायेगा।

दूसरी ओर रानी चेलना का विवाह विधर्मी से हुआ तो राजपुत्री व भगवान महावीर की मौसी होते हुये भी बाधाओं को सहन करना पड़ा। तत्त्वश्रद्धान व पुण्योदय होने से राजा श्रेणिक भी सन्मार्ग में आ गये परन्तु सर्वत्र ऐसा संभव नहीं है अतः जानबूझकर पद-पैसा या रूप के व्यामोह में विधर्मी के संग

विवाह नहीं करना चाहिए।

वर्तमान के समय की विडंबना है कि युवा-युवती परस्पर में ही नहीं अपितु उनके माता-पिता भी धर्म की मुख्यता न देकर धन-पद-रूप या समाज की मुख्यता रखते हैं। सजातीय संबंध हो, विजातीय नहीं हो, बहुत अच्छी बात है परन्तु सजातीय होते हुये भी सधर्मा नहीं हुआ तो सजातीय होने से क्या लाभ है? यदि जैन होकर भी देव-शास्त्र-गुरु का श्रद्धान न हो, तत्त्वज्ञान के प्रति प्रेम न हो, अष्टमूलगुणों का पालन न होता हो और मिथ्यात्व/अंधविश्वासों का पोषण होता हो, ऐसे सजातीय परिवार से हम लौकिक अनुकूलतायें तो कुछ समय को प्राप्त कर सकते हैं परन्तु पारलौकिक जीवन शून्य ही रह जायेगा।

यहाँ यह ध्यान रखने योग्य है कि जहाँ भी विधर्मी वर-वधु के प्रसंग बनते हैं, वहाँ पर दोष ढ़ंकने के लिए माता-पिता इस प्रकार के तर्क देते हुये मिलेंगे कि दामाद या बहू बहुत सुन्दर हैं, सेवाभावी हैं, प्रेमी हैं, सरल हैं, प्रसन्न रहने वाले हैं आदि परन्तु बंधुओ! विधर्मी का अर्थ असुन्दर, निर्दयी, निकम्मा, झगड़ालू, निदंनीय होना नहीं है।

जो वीतरागी देव-शास्त्र-गुरु-धर्म, अकर्तावाद-अनेकान्तवाद को नहीं मानते अपितु इससे विपरीत राग-द्वेष/मिथ्यात्व का पोषण करते हैं, वे विधर्मी हैं। इसे हम कर्मसिद्धान्त की भाषा में कह सकते हैं कि जिनके पुण्योदय है व पुण्यबंध के कार्य भी करते हैं परन्तु जो मिथ्यात्व सहित हैं, मिथ्यात्व को ही अच्छा मानते हैं, मिथ्यात्व का ही पोषण करते हैं, वे सभी विधर्मी हैं।

हमारे प्रगतिवादी बंधु यहाँ इसप्रकार का कथन भी कर सकते हैं कि हम स्वयं या हमारी संतान ही वीतरागी देव-शास्त्र-गुरु के अनुयायी नहीं हैं, उनका सही स्वरूप नहीं जानते, स्वाध्याय नहीं करते, रात्रि भोजन करते हैं इसलिए हम तो विधर्मी व विजातीय वैवाहिक संबध कर सकते हैं?

बंधुओ! आप कर तो कुछ भी सकते हो, पर हम कहना चाहेंगे कि ऐसा करना नहीं चाहिये; क्योंकि जिनधर्मावालंबी माता-पिता को पाकर भी हम अध्ययन/नौकरी/व्यवसाय/आधुनिकता की दौड़ में अपने धर्म को भूल गये परन्तु यदि सजातीय/सधर्मा साथी होंगे तो अभी नहीं तो कभी तो धर्ममार्ग पर चल सकेंगे, अवसर तो बने रहेंगे परन्तु विजातीय ही साथी हो गया तो तब तो पीढ़ियों तक भी हम आनदंमयी/वीतरागी मार्ग से दूर हो जायेंगे।

यह जीवन स्वच्छंद जीवन जीने, संतान उत्पन्न करने, संतान का पालन-पोषण कर उन्हें धन कमाने की प्रतिस्पर्धा में दौड़ाने के लिए नहीं मिला है अपितु किस तरह प्रतिकूलताओं में भी शांतिपूर्वक जीवन जिया जा सके, किस तरह अनंत दुख के कारण स्वरूप मिथ्यात्व-राग-द्वेष का अभाव किया जा सके व निज आत्मा का परिचय प्राप्त किया जा सके इस हेतु मिला है।

पद-पैसा तो कोई भी प्राप्त कर लेता है, नाना प्रकार का परिग्रह तो कोई भी जोड़ सकता है, पद-पैसा-प्रतिष्ठा आदि यह सब जैन कुल पाने की उपलब्धि नहीं है। विवाह धर्म मार्ग पर चलने एवं धर्मानुकूल लौकिक मार्ग पर चलने के लिए किया जाता है इसीलिये पत्नी को 'धर्म-पत्नी' संबोधित किया जाता है।

सागार-धर्मामृत में पण्डित आशाधरजी कहते हैं - जो धार्मिक संस्कारों से युक्त कन्या साधर्मी के साथ विवाहित करते हैं, उसे महान पुण्यबंध होता है -

सत्कन्यां ददता दत्तः सत्रिवर्गो गृहाश्रमः।
गृहं हि गृहिणोमाहुर्न कुड्यकटसंहिंतम्।।

सत्कन्या देनेवाले ने धर्म-अर्थ-काम सहित गृहाश्रम दे दिया, क्योंकि पत्नी को ही गृह कहते हैं, दीवाल और बांस आदि के समूह को गृह नहीं कहते।''

धर्महीन पत्नी के संयोग से जीवन नष्ट हो जाता है

यदि धर्म/आचरणहीन पत्नी होती है तो जीवन ही बरबाद हो जाता है। जैसा कि कहा भी है -

''तणयं णासइ वंसो, णासइ दियहो कुभोयणे भुत्ते।
कुकलत्तेण य जम्मो, णासई धम्मो विणु दयाए।।

कुपुत्र वंश का नाश कर देता है, कुभोजन से दिन ही नष्ट होता है परन्तु कुपत्नी से जन्म ही नष्ट हो जाता है।'' यही अभिप्राय कुपति के सम्बन्ध में समझ लेना चाहिए।

वर के गुण

वर के किन गुणों को देखकर कन्या देना चाहिये ? इस संबंध में पण्डित आशाधरजी कहते हैं -

''कुल, शील, सनाथता, विद्या, धन, शरीर और आयु इन सात गुणों की परीक्षा करके ही कन्या देना चाहिए।''

कौनसी विधि मान्य है ?

हमारे आधुनिक तार्किक युवा कह सकते हैं कि यह विवाह

विधि, सात फेरे आदि तो अन्य मत के अनुसार हैं जैनधर्म में ऐसी विधि/दस्तूरों की क्या उपयोगिता है? ऐसे तर्कों का उत्तर देते हुये सोमदेव आचार्य लिखते हैं –

"सर्व एव हि जैनानां प्रमाणं लौकिकी विधिः।
यत्र सम्यक्त्वहानिर्न, यत्र न व्रतदूषणम।।

सभी जैनों को ऐसी लौकिक विधि मान्य है, जिसके पालन करने से सम्यक्त्व की हानि न हो और व्रतों में दूषण न लगे।"

सात फेरे क्यों?

आचार्यों ने विवाह के अवसर पर लिये जाने वाले सात फेरों के पीछे बहुत ही मनमोहक कारण दिये हैं। प्रथम फेरा सज्जातिपना प्रगट होने की भावना से लिया जाता है। दूसरा फेरा सद्गृहस्थत्व अर्थात् हम उत्तम जाति में आकर एक अच्छे गृहस्थपने को प्राप्त करें और तीसरा फेरा गृहस्थधर्म का पालन करने के बाद संन्यास आश्रम में प्रवेश कर नग्न दिगम्बर साधुपना धारण कर सकें इस भावना से लेने का विधान है। चौथा–पाँचवाँ फेरा धर्म पालन करने के फलस्वरूप इन्द्र–चक्रवर्ती जैसे उत्तम पद प्राप्त हों कि भावना से, छठा फेरा सांसारिक भोगों को भोगने के बाद वीतरागता के फलस्वरूप जिनेश्वर/अर्हन्त पद की प्राप्ति तथा अंतिम सातवाँ फेरा निर्वाण/सिद्धत्व प्राप्त हो – इस भावना से लिये जाने का विधान किया गया है।

इस तरह **सज्जातित्व, सदगृहस्थित्व, साधुत्व, इन्द्रत्व, चक्रवर्तित्व, जिनेश्वरत्व एवं निर्वाणत्व** इन सात कल्याणस्वरूप पदों की प्राप्ति की मांगलिक/उत्तम भावनाओं से सात फेरे लगाये

जाते हैं, इन भावनाओं का स्मरण कराते हुये ही गृहस्थाचार्य यंत्र/जिनवाणी व समाज के पंचों के समक्ष अर्घ्य भी समर्पित कराते हैं।

सात वचनों की उपयोगिता

छठवें फेरे के बाद वर-वधु द्वारा सात वचनों को प्रस्तुत करने व स्वीकार करने का विधान आचार्यों द्वारा किया गया है। इन वचनों की स्वीकृति के बाद ही सातवाँ फेरा होता है, तभी परिणय/विवाह पूर्ण कहलाता है। इन वचनों को यदि सच में समझा व स्वीकार किया जाये तो व्यक्तिगत ही नहीं पारिवारिक/सामाजिक जीवन भी मंगलमय हो कर 'मंगल-परिणय' नाम सार्थकता हो सकता है।

वर के द्वारा वधू से लिए जाने वाले सप्त वचन

1. मेरे गुरुजन और कुटुम्बियों की यथायोग्य विनय और सेवा करनी होगी।
   (परिवार वाले सदैव प्रसन्न रहेंगे)
2. मेरी आज्ञा को भंग नहीं करना होगा।
   (परस्पर में प्रीतिभाव बना रहेगा)
3. कठोर और अप्रिय वचन नहीं कहना होगा।
   (हर व्यक्ति प्रसन्न रहेगा।)
4. घर पर मेरे हितैषी तथा सत्पात्रों के आने पर उनके आदर-सत्कार और आहार आदि को देते समय कलुषित मन नहीं करना होगा।
   (सत्पात्रों के गृहागमन से घर/मन पवित्र होगा, पुण्य का बंध होगा, व्यवहार धर्म की प्रवृत्ति चलेगी।)

5. मेरी आज्ञा के बिना किसी दूसरे के घर नहीं जाना होगा।
(शील पर झूठा भी आरोप नहीं लग सकेगा, जिससे परस्पर में तथा परिवार में शान्ति रहेगी।)
6. जहाँ बहुत भीड़ हो ऐसे मेले आदि में तथा जिनका आचरण और धर्म खराब है ऐसे मद्य आदि पीने वाले तथा विधर्मियों के घर कभी नहीं जाना होगा।
(तन-मन-धन की सुरक्षा होगी, मिथ्यात्व का पोषण नहीं होगा।)
7. अपनी कोई भी गुप्त बात मुझसे छिपानी नहीं होगी और मेरी गुप्त बात किसी दूसरे से नहीं कहनी होगी।
(परस्पर में विश्वास बना रहेगा जिससे प्रीति बढ़ेगी, जिससे पारिवारिक सुख-शान्ति बनी रहेगी।)

वधू की ओर से सात वचन

1. पर-स्त्रियों के साथ क्रीड़ा नहीं करनी होगी।
(स्वदार संतोष व्रत का पालन होगा, सच्चरित्र कहलायेंगे जिससे सम्मान व सुख प्राप्त होगा।)
2. जुआ नहीं खेलना होगा।
(धन सुरक्षा व सामाजिक सम्मान होगा।)
3. अपनी सम्पत्ति पर मुझे समान अधिकार देना होगा।
(पारस्परिक स्नेह रहेगा, पत्नी के हृदय में असुरक्षा का भाव नहीं रहेगा।)
4. न्याय और उद्योग से उपार्जित धन से मेरे भोजन, वस्त्र और

आभूषण की व्यवस्था करते हुये मेरी रक्षा करनी होगी। (न्याय-नीति से चलने पर तनावमुक्त जीवन रहेगा।)

5. तीर्थ-स्थान, जिन-मंदिर आदि धर्म-स्थानों को जाने में बाधक नहीं होते हुए धार्मिक कार्यों से मुझे वंचित नहीं करना होगा।
(समाज व्यवस्था और धर्म आस्था का विषय है। आस्था व्यक्तिगत होती है जिसमें अन्य किसी को हस्तक्षेप करने का अधिकार नहीं है। इस नियम का पालन कर पत्नी के इस अधिकार की सुरक्षा होगी व पारस्परिक कलह से बचेंगे।)

6. अनुचित और कठोर दण्ड मुझे नहीं देना होगा।
(सामान्यतया पत्नी आयु व ज्ञान में पति से छोटी हो सकती है, अतः किसी प्रकार की गलती भी हो सकती है परन्तु अपने को बड़ा मानकर अनुचित व कठोर दण्ड जो कि तन-मन को कष्टकर हो वह नहीं देने की प्रतिज्ञा पर घर से आई हुई सुकुमारी को सुरक्षा का भाव उत्पन्न करता है।)

7. मुझे जीवन-पर्यन्त कभी नहीं त्यागना होगा।
(हमारी जैन संस्कृति में पति-पत्नी का त्याग वीतराग भाव प्रकट होने पर ही किया जाता है, किसी भी प्रकार के राग-द्वेष के कारण अर्थात् किसी अन्य स्त्री के राग या क्रोध भाव उत्पन्न होने पर त्याग करना अनैतिक/असामाजिक है, इस नियम का पालन कर हम सद्-नागरिक/धार्मिक होने का सम्मान प्राप्त कर सकेंगे।)

वर-वधू की सहमति के पश्चात् गृहस्थाचार्य द्वारा सर्वोपयोगी सात नियम दिलाये जाते हैं जो कि सभी के लिए अनुकरणीय हैं -

1. जीवन पर्यन्त साथ रहते हुये सहनशील और कर्मवीर बनकर एक-दूसरे के लिए जीवित रहना, जीवन से निराश न होना।
   (विपरीत परिस्थिति आ जाने पर भी धैर्य रखते हुये आत्महत्या जैसे पाप की ओर अग्रसर नहीं होना।)
2. दाम्पत्य जीवन को सुखी बनाने और गृह जीवन के निर्माण में भीतर का उत्तरदायित्व नारी को और बाह्य जीवन का उत्तरदायित्व पुरुष पर है।
   (आज के युग में स्त्री-पुरुष में बहुत कुछ समानतायें होते हुए, स्त्री द्वारा भी धनार्जन में सहभागी बनने पर भी इस भारतीय मनोविज्ञान या संस्कृति को नकारा नहीं जा सकता)
3. एक-दूसरे के परिवार के सदस्य बन कर सबके स्नेह और आदर के पात्र बनना। विनय, सेवा करना एवं सद्व्यवहार से घर और ससुराल को स्वर्ग बनाना।
4. परस्पर स्नेह, अभिन्नता, आकर्षण, विश्वास बना रहे - इसके उपाय आचरण में लाना। पति के लिए पत्नी सर्वाधिक सुन्दर व प्रिय और पत्नी के लिए परमाराध्य/सुन्दर पुरुष रहे।
5. वधू को कुलवधू (सीता, अन्जना, सुलोचना आदि के

समान) और वर को कुल पुत्र (राम, जयकुमार, सुदर्शन आदि के समान) बनना, जिनसे घर का सम्मान, गौरव, प्रतिष्ठा, कीर्ति बनी रहे वैसे काम करना। निर्व्यसनी, शीलवान और विवेकी बनना।

6. जिनेन्द्र देव-गुरु-शास्त्र की अर्चना एवं साक्षीपूर्वक विवाह सम्पन्न हो रहा है उनमें श्रद्धा बनाये रखें, इससे बुराइयों से बचने में बल मिलता रहे। आत्महित (वीतरागता) की ओर दृष्टि रखें।
7. समाज, जनता और राष्ट्र की सेवा में दोनों परस्पर सहयोग से आगे बढ़ें तथा विलासिता से बचें।

नवदेव पूजन का उद्देश्य

फेरे/भांवर/सप्तपदी के अवसर पर विनायक यंत्र/जिनवाणी के समक्ष पंचपरमेष्ठी भगवन्तों/नवदेवताओं की पूजन इसलिए नहीं की जाती है कि आप जीवन में पापाचार/दुराचार/अन्याय/अनीति कुछ भी करते रहें और भगवान आपकी रक्षा करते रहें बल्कि इसलिये कि जिसप्रकार इस प्रसन्नता के अवसर हम सबसे पहले उनको साक्षी मानकर अपना कदम बढ़ा रहे हैं, जिससे कभी हम अन्याय/अनीति/असदाचार के मार्ग पर न चल सकें। इसीतरह जीवन में पुण्योदय/पापोदय के आने पर परिस्थिति कैसी भी बदल जायें पर हम अपने देव-शास्त्र-गुरु और उनके सिद्धान्तों को भूल न जायें, गलत रास्ते पर न जायें, श्रावकाचार-कुलाचार न भूल जायें।

फेरों के समय ध्यान रखने योग्य

फेरों के समय इस बात का परिवार के बड़े सदस्यों को भी ध्यान रखना चाहिये कि इस समय जो पूजन आदि कार्य होते हैं वह विनयपूर्वक शालीनता से हों। प्रायः देखा जाता है कि या तो समय पर पूजन प्रारंभ नहीं होती, रिश्तेदार भी खाने-पीने में लग जाते हैं अतः कोई ढ़ंग से वहाँ उपस्थित नहीं रहता, वर के मित्र वहाँ उपस्थित रहकर पूजन/फेरों/सप्त वचनों आदि के समय मजाक का वातावरण बना देते हैं जो निश्चित ही अशुभ है, पापबंध का कारण है। अतः ध्यान रखें कि वैवाहिक कार्यक्रम में एक यही तो कार्य है जो सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण है, आगमानुकूल है, (अन्य सभी दस्तूर तो समाजिक परंपरा के अनुसार होते हैं) देव-शास्त्र-गुरु की साक्षीपूर्वक है अतः 1 घंटे का समय हमें व्यवस्थित रहकर ही विधि सम्पन्न कराना चाहिये।

- इस समय जिनवाणी/यंत्रजी से उच्च स्थान पर कोई न बैठे।
- जूते-चप्पल पहिनकर सामने कोई न बैठे।
- पूजन के समय उस स्थान पर खाने-पीने का कार्य न किया जाये।
- जब हम भोजन ही दिन में करना चाहते हैं, तो पूजन तो रात्रि में कैसे हो सकती है ? अतः रात्रि में फेरे नहीं होना चाहिये।

निष्कर्ष

वर-वधू के सात वचनों तथा गृहस्थाचार्य द्वारा कराई गई प्रतिज्ञाओं को पढ़कर आप स्वयं समझ सकते हैं कि आचार्यों/

विद्वानों के इन आगमानुकूल वचनों के अनुसार ही तो हर माता-पिता (जो कि अब सास-ससुर बन रहे हैं) (अपरिचित युवा-युवती जो कि अब पति-पत्नी बन रहे हैं एवं देश-समाज के लिए एक योग्य दंपत्ति प्राप्त हो रहे हैं) भी तो इसी प्रकार का शांतिपूर्ण/वात्सल्ययुक्त/सुखद जीवन चाहते हैं। हो सकता है भाषा में अंतर हो पर भावों में नहीं है।

हो सकता है विवाह के अवसर पर दिये गये वचनों को 'वर-वधू' उस समय के वातावरण के कारण न तो ध्यानपूर्वक सुन सके हों न ही अब याद हों कि उन्होंने क्या प्रतिज्ञायें ली थीं परन्तु क्या वास्तव में वे ऐसा ही जीवन व जीवनसाथी नहीं चाहते हैं ? हो सकता है कि कुछ नियम बहुत आदर्शपरक लग रहे हों तो मित्रो! आदर्श तो सदैव ऊँचा ही रखा जाता है, लक्ष्य तो ऊँचा ही बनाया जाता है, उस लक्ष्य तक पहुँचने का प्रयास किया जाता है, यदि व्यक्तिगत कमजोरी से हम वहाँ तक न पहुँच सकें तो यह हमारा ही दोष है।

मित्रो! मैं यहाँ पर यह भी कहना चाहूँगा कि भले ही हम मनोरंजन के लिए पिक्चर देखते हों, समयाभाव या प्रमादवश महापुरुषों के जीवन चरित्र न पढ़ते हों, परन्तु पिक्चरों में चमकने-दमकने वाले हीरो हमारे आदर्श नहीं हैं, वे तो धन कमाने के लिए राम का चरित्र भी प्रस्तुत करते हैं, और रावण का भी और वे जिस तरह का जीवन जीते हैं वैसा तो आप भी पसंद नहीं करेंगे। हमारे चरित्रनायक तो महावीर-राम-सुदर्शन-श्रीपाल-सीता-अंजना-चेलना आदि ही हैं, जिन्होंने दोहरे चरित्र प्रस्तुत नहीं

किये, जिन्होंने अनुकूलता या प्रतिकूलता किसी भी परिस्थिति में धर्म नहीं छोड़ा।

यहाँ जो भी लिखा जा रहा है वह 'सड़क छाप' लोगों के लिए नहीं है, न ही आप अपनी उनसे तुलना करना। हम सबने उस कुल में जन्म लिया है, जिसमें तीर्थंकर/मुनिराज/आर्यिका मातायें हुई हैं। हमने उस धर्म को प्राप्त किया है, जिसका नाम लेना मात्र देश ही नहीं विश्व धर्मज्ञों के बीच सम्मान का विषय होता है।

मित्रो! हम अपने गौरव को पहिचाने। मात्र 5-10 वर्ष के भविष्य के लिए हजारों वर्षों के भविष्य को न बिगाड़ें। धर्मानुकूल जीवन जीते हुये हम वर्तमान के लौकिक जीवन में भी स्वस्थ/स्वच्छ/समृद्ध व प्रसन्न रह सकते हैं, दूसरों की प्रसन्नता का कारण बन सकते हैं और लोकोत्तर शांति/सुख की ओर भी अग्रसर हो सकते हैं।

मित्रो! ध्यान रखें 'संस्कार बिना की सुविधायें पतन का कारण होती हैं।' अतः हम अपना जीवन जनवाणी के अनुसार नहीं जिनवाणी के अनुसार बनायें।

I have read first time such an authentic book on marriage ceremony. Though I have not married but I think I am more happy than those who are married.This book throw light on every aspect of marriage about its need with respect to following our great Jain religion. Out of our 24 Tirthankaras only 5 Tirthankaras escaped from this event nay accident.If the purpose of marrying or not marrying is meant for spiritual upliftment and conquering the carnal desires then both the ways are praiseworthy.

Rajkumar ji Shastri! I would like to congratulate you for writing on such burning topics of the present day society and making the people aware of the dire consequences of deviating from the right cum practical path of human life. **- Br. Hemchand Jain 'Hem', Devlali**

वैवाहिक कार्यक्रमों में फैलती विकृतियाँ

सांसारिक/सामाजिक जीवन का एक अनिवार्य कृत्य 'परिणय' जो कि अनेक प्रकार के दोषों से युक्त है, परन्तु हमारे आचार्यों/मनीषियों ने उसका जो स्वरूप/विधि/भावना/उद्देश्य निर्धारित किया है, तदनुसार इसे 'मंगल–परिणय' या 'शुभ–विवाह' कहा जाता है।

'परिणय' इस कर्मभूमि के मनुष्यों के लिए सदाचारमय व शान्तिमय जीवन जीने के लिए अनिवार्य रहा है, जिसके कारण आज तक यह परंपरा निर्बाधरूप से चली आ रही है। वैवाहिक संस्कारों की उदात्त भावनाओं को आज की दिखावट/बनावट/सजावट वाली संस्कृति ने बहुत विकृत कर दिया है। 'परिणय' का जो धार्मिक भावनाओं/क्रियाओं की अपेक्षा शुभ पक्ष था वह अब न के बराबर ही रह गया है। इस प्रसंग में इन विकृतियों पर चर्चा करना आवश्यक है –

1. दहेज प्रथा – देश के अनेक प्रदेशों में दहेज प्रथा भयंकर बीमारी के रूप में चल रही है। वर्तमान में कन्याओं की संख्या कुछ कम होने से इसमें कुछ कमी आई है परन्तु फिर भी जिनके पुत्र उच्च पदों पर हैं, कुछ विशेष योग्यता के धारक हैं, वह कन्या पक्ष से पूरी सौदेबाजी के बाद ही विवाह सम्पन्न कराते हैं।

'संस्कारी बहू ही दहेज है' इस बात को कहने वाली समाज में भी दहेज के लेन–देन के कारण अनेक संबंध टूटे हैं, माता–पिता दुखी हुये हैं, हत्या और आत्महत्यायें हुई हैं।

कन्या पक्ष भी इस पृथा को बढ़ावा देने में पीछे नहीं हैं। वे जब योग्य वर के परिवार से मिलते हैं तो अपना प्रस्ताव रखते ही किसी न किसी बहाने "हम इतना खर्च करेंगे, यह सामान देंगे, हमें लड़की को कुछ न कुछ देना ही है, उसका भी हिस्सा बनता है, स्वागत में कमी नहीं रखेंगे, यह तो हमारा कर्तव्य है।" इत्यादि बातें करके मानो वह वर का 'मूल्यांकन' कर रहे हैं और लोभी माता-पिता 'वर' के 'भाव' बढ़ाने से नहीं चूकते।

समाज के प्रबुद्ध माता-पिता व युवाओं को अपने आपको बाजार की एक 'विक्रय योग्य वस्तु' के रूप में स्थापित न करके मृदु/वात्सल्यमय व्यवहार से ही 'परिणय' सम्पन्न कराना चाहिये, जिससे दो परिवार ही नहीं, उनके सभी रिश्तेदार भी विशेष स्नेह बंधन में बंध जायें, सुख-दुःख व धर्म मार्ग के सहचारी बन जायें।

2. दिखावा - वैवाहिक कार्यक्रम परिवार के लिए हर्षोल्लास का कारण होते हैं, जिसमें स्वाभाविक रूप से वस्त्राभूषण-भोजन-श्रृंगार आदि का उपयोग होता है। परन्तु जब यही उपयोग अपनी क्षमता से बाहर जाकर, अनावश्यक, संस्कृति विरुद्ध या अपनी प्रसन्नता के कारण नहीं बल्कि अन्य को प्रभावित करने के लिए किया जाता है, तब वह दिखावा/प्रदर्शन/अनावश्यक व्यय कहलाता है।

वर्तमान में इसप्रकार का व्यय अधिक बढ़ता जा रहा है, जिसके न किये जाने पर वैवाहिक आनंद में कोई कमी नहीं आने वाली थी, परन्तु अन्य ने किया था अतः उनको दिखाने, अपना नाम बड़ा करने के लिए किया जाता है, जो अनेक परिवारों में

कलह व आर्थिक रूप से बरबाद होने का कारण बनता है। अतः हमें अन्य की देखादेखी नहीं, अपनी सामर्थ्य एवं आवश्यकता देखते हुये ही व्यय करना चाहिये। यदि हमारे पास धन हो तो भी व्यर्थ में ही आतिशबाजी, पेशेवर गायक नर्तकों के प्रदर्शन, महँगा और अभक्ष्य भोजन कराने, बड़े-बड़े होटलों के गार्डन आदि में खर्च नहीं करना चाहिये।

यदि पुण्योदय से अपने पास धन है तो विवाह की प्रसन्नता में विद्यालयों को दान देकर, गरीबों की सहायता करके या अन्य परमार्थ/पुण्य के कार्य करके इस प्रसंग को स्मरणीय बनाया जा सकता है।

3. महिला संगीत - विवाह में गीत-संगीत सदैव से होते रहे हैं। परिवार में पुरुष वर्ग विवाह संबंधी बाहर की तैयारियों में लगे रहते और महिला वर्ग घर के अन्दर की तैयारियों के साथ वर-वधू संबंधी प्रासंगिक गीत उल्लासपूर्वक गाती रहतीं। गाँव में परिवार व मुहल्ले की महिलायें मिलकर बुलावे में एकत्र होकर गीत गातीं व संबंधित परिवार का उत्साह व खुशियाँ बढ़ातीं। परन्तु आज की इस अर्थ व प्रदर्शन प्रधान संस्कृति ने भव्य मंचों की रचना करवा कर ध्वनि प्रदूषण फैलाने वाले ध्वनि विस्तारक यन्त्रों से निकलती फिल्मी गीतों की ध्वनियों पर उन महिलाओं को भी नाचने के लिए प्रेरित किया है, जिन्होंने कभी कमरे में भी नृत्य नहीं किया।

महिला-पुरुष अंग प्रदर्शित करते वस्त्र पहिन कर, हाथ पकड़ कर, बेहूदे गानों पर समागत स्त्री-पुरुषों, युवा-युवतियों के

सामने ऐसे नृत्य प्रस्तुत करते हैं, जिन्हें देखकर सज्जन शर्मिन्दा हो जायें। लड़के-लड़कियाँ विवाह के उन गीतों/संकेतों पर नृत्य करते हैं, जिनको आंतरिक भावनाओं के दृश्य कहा जा सकता है।

पेशेवर युवा नृत्य निर्देशकों के साथ लड़कियाँ नृत्य सीखने जाती हैं, फलस्वरूप लगभग हर बड़े शहर में उन्हीं लड़कियों के प्रेम प्रसंग बनने व घर से भागने की घटनायें भी हो रही हैं।

हम यह नहीं कहना चाहते हैं कि विवाह की खुशी के प्रसंग में भाई-बहिन, भाभी, मित्र आदि हँसी-मजाक न करें, गीत न गायें, नृत्य न करें परन्तु उन गीतों-नृत्यों में शालीनता हो, रिश्तों के अनुकूल गीतों/भावनाओं पर ही नृत्य करें।

पुरुषों विशेष कर ऐसे युवा वर्ग जिनके साथ हमारा पारिवारिक संबंध नहीं हैं, उनके साथ व उनके सामने युवतियाँ नृत्य न करें।

सड़कों पर बारात में लड़के-लड़कियाँ नृत्य न करें; अन्यथा इनसे होने वाले 'दुष्परिणामों' को भोगने के लिए भी तैयार रहें।

महिला संगीत या वैवाहिक भोज आदि के कार्यक्रमों में अपनी समाज में भी महिलाओं व लड़कियों द्वारा जिस तरह के कपड़े पहने जा रहे हैं, उनको देखकर ही नहीं लगता कि वस्त्र शरीर/अंग ढ़ंकने के लिए पहिने जा रहे हैं या अंग दिखाने के लिए। यह सब हमारी सभ्यता/संस्कृति/शील के सर्वथा विरुद्ध है। भरी सर्दी में भी महिलायें स्लीबलैस/छोटे-छोटे पारदर्शी वस्त्रों को पहिन कर शादियों में सम्मिलित होती हैं, और पुरुष वर्ग कनखियों से उनके अंगों को देखकर वस्त्रों की प्रशंसा करते हैं। वस्त्रों में नवीनता के साथ शालीनता भी होना ही चाहिये इसका

ध्यान माता-पिता को बचपन से ही रखना चाहिए।

4. रात्रि भोज - प्रतिदिन जिनदर्शन करना, रात्रि भोजन नहीं करना व पानी छानकर पीना यह जैनों की बाह्य निशानियाँ कही जाती थीं परन्तु इसे हम 'पंचमकाल' का दुष्प्रभाव ही कहा जायेगा कि आज यह लक्षण गायब होते जा रहे हैं, जब लक्षण ही नहीं होगा तो जैनत्व रूपी लक्ष्य भी कहाँ से प्राप्त होगा।

इस प्रसंग में मैं यह भी कहना चाहता हूँ कि विजातीय व विधर्मा संबंध होने के पीछे इन लक्षणों की कमी भी बहुत बड़ा कारण है। यदि युवक-युवती अपने **वीतरागी देव-शास्त्र-गुरु के प्रति आस्थावान हों, रात्रि भोजन न करते हों व पानी छानकर पीते हों** तो अन्य प्रकार के आचरण वालों के साथ इस स्तर की मित्रता हो ही नहीं सकती कि 'प्रेम-विवाह' करने का अवसर आवे व माता-पिता को शर्मिन्दा होना पड़े। परन्तु रात्रि भोजन करने, पानी छानकर न पीने के कारण होटलों में खाने-पीने व मंदिर में जाने का विवेक न होने से ही इस प्रकार के प्रसंग बनते हैं। अतः हम सभी को अपने त्रिलक्षणों के पालन के संस्कार अपने बालकों में हरसंभव प्रयास करके डालना चाहिये, इसी में व्यक्ति/परिवार/समाज की भलाई है।

वर्तमान में व्यावसायिक व्यवस्थाओं/विवशताओं में किये गये रात्रि भोजन ने परंपरा का रूप ले लिया है। किसी व्यक्ति द्वारा व्यक्तिगत रूप से किया गया दोष, समाज को जितना हानिकर नहीं है उतना सामूहिक स्तर पर किया गया दोष। कितनी विडंबना है कि अन्य धर्म के अनुयायी सज्जन जैनों के लिए प्रीतिभोज

आदि में सूर्यास्त पूर्व भोजन की व्यवस्था की सूचना प्रकाशित करते हैं और हम भोजन ही रात्रि में प्रारंभ कराते हैं। जहाँ पर शाम के भोजन की व्यवस्था होती भी है तो वहाँ पर न तो पर्याप्त व्यवस्थायें होती हैं और न ही भोजन करने वाले पहुँचते हैं। हम अहिंसक संस्कृति के नाशक बनकर किस गति में जायेंगे? कहा नहीं जा सकता।

मित्रो! कोई घर पर रात्रि भोजन करता भी हो तो भी सार्वजनिक रूप से तो रात्रिभोजन करने/कराने का त्याग करना ही चाहिये। हम धन के प्रदर्शन के लिए कितना समय/श्रम/धन खर्च करते हैं तो क्या हम अपने धर्म के प्रदर्शन/प्रभावना के लिए कुछ नहीं कर सकते?

वैवाहिक कार्यक्रमों में रात्रिभोज एक बहुत बड़ी विकृति के रूप में बढ़ रहा है, जो हमारे ही प्रयासों से कम हो सकता है।

5. 'प्री-वैडिंग' का प्रदर्शन - हमारी संस्कृति रही है कि जब तक सात फेरे न हो जायें तब तक लड़का-लड़की, वर-वधू तो हैं पर पति-पत्नी नहीं। इसीलिए उनके मिलने-जुलने में माता-पिता द्वारा अनेक प्रकार की मर्यादायें भी रखी जाती थीं, परन्तु वर्तमान में 'प्री-वैडिंग सूटिंग' के द्वारा उस संस्कृति की धज्जियाँ उड़ाई जा रही हैं।

होने-वाले पति-पत्नी, हो गये पति-पत्नी के समान अंतरंग दृश्यों को भी फिल्माकर सार्वजनिक स्थलों पर प्रदर्शित करते हैं। उनका हाथ पकड़ कर नाचते, भागते, गोद में सिर रखकर सोते, तरह-तरह के स्थानों पर, तरह-तरह से वस्त्र पहिने दृश्यों को

देखकर समाज के आबाल-वृद्ध किसी रोमांटिक/वयस्क फिल्म जैसा आनंद लेते दिखते हैं। उनके अविवाहित युवा भाई-बहिन इससे क्या शिक्षा लेते होंगे ? विद्वानों द्वारा शील भावना की दी गई शिक्षायें पता नहीं किस कोने में पड़ी सिसकती होंगी ?

मित्रो ! इस प्रकार के आयोजन मात्र अविवेकपूर्ण फिल्मी प्रदर्शन के लिए ही हो सकते हैं, जो हमारी जैन विवाह पद्धति/ संस्कृति/भावना के सर्वथा विरुद्ध हैं और 'मंगल-परिणय' में से मंगल व 'शुभ-विवाह' में से शुभ हटाने वाले हैं।

बसना सम्हल-सम्हल के

बसना सम्हल-सम्हल के, नये घर में बसने वाले।
चलना सम्हल सम्हल के नये पथ पर चलने वाले।। टेक।।

विषयों का विष यहाँ पर, चहुँ ओर ही है फैला।
है कीच कषायों से, हर दिल यहाँ पै मैला।।
विष कंटकों से बचना, इस जग में रहने वाले।।1।।

संयम न धर सकें जो, है खेदरूप वर्तन।
स्थूल पाप त्यागन, इस पथ करें प्रवर्तन।।
पापों के पथ में प्यारे, चलना सम्हल-सम्हल के।।2।।

जिनधर्म को न तजना, हो उदय वज्रसम गर।
नृपवत् मिले विभूति, या ठोकरें हो दर-दर।।
उदयों से बचके रहना, उदयों में रहने वाले।।3।।

जब तक भी घर में बसना, सौजन्य सबसे रखना।
जिनवाणी-पूज्यजन की, आज्ञा को सर पे धरना।।
शिवपथ तुम्हें मिलेगा, जिनपथ पे चलने वाले।।4।।

‘मंगल-परिणय’ और हमारे कर्त्तव्य

यह एक महत्त्वपूर्ण तथ्य है कि समय बहुत तेजी के साथ बदल रहा है। अब वैवाहिक संबंध परिपक्व आयु/बुद्धि की स्थिति में ही हो रहे हैं। उच्चशिक्षित व बड़े पैकेज पाने वाले अधिकांश युवा-युवती आपसी सहमति (जिनमें परिवार की सहमति भी अनिवार्यतः होती है) से ही विवाह बंधन में बंध रहे हैं, जिससे वे स्वयं एक दूसरे के विचारों से भलीभांति परिचित होते हैं, परिवार वाले भी उन दोनों के विचारों को समझे हुये होते हैं क्योंकि अपने विचार तो उनको समझाने योग्य हम रह ही नहीं जाते हैं अतः उनके विचारों को समझने/स्वीकारने के अतिरिक्त कोई रास्ता ही नहीं रहता।

इस सबके बावजूद यह देखने में आता है कि जिस तरह तोते को कितना भी बोलना सिखाया जाये, बन्दर को कितना भी चलना सिखाया जाये पर वे सीखकर आदमी तो नहीं बन सकते, अपने नैसर्गिक गुणों को तो नहीं छोड़ सकते, छोड़ना भी नहीं चाहिये।

उसी प्रकार हम कितने भी शिक्षित हों, कितना भी पैसा कमाते हों, कितने भी बहू को ‘बेटी’ मानने की बातें की जायें, बहू भी सास-ससुर को ‘माता-पिता’ मानने की बात कहे, परन्तु अंतरंग में जो अलग-अलग रिश्तों की भावनायें/मान्यतायें हैं, वह कभी समाप्त नहीं होतीं, होना भी नहीं चाहिये; और जब उन भावनाओं के अनुकूल कार्य नहीं होता तो मन भी दुखता है, जो शनैः-शनैः कलह/परिवार टूटने का कारण बन जाता है। अतः

यह आवश्यक है कि हम यह न भूलें कि 'बाह्य वेश कैसा भी हो, पर देश तो अपना ही है', संस्कृति तो अपनी ही है; जिस संस्कृति पर विश्व अभिमान करता था उस सदाचार/वात्सल्यमयी संस्कृति को हम भुलायें भी क्यों ?

मैं यह मानते हुये भी कि आज के बच्चे भी मुझसे अधिक समझदार हैं, हमारी बात मानने वाले नहीं है फिर भी जो मन में भावनायें हैं उन्हें इन कर्त्तव्यों के माध्यम से आप सभी तक पहुँचा रहा हूँ। हम सभी मात्र अपने अधिकारों की याद रखते हैं पर कर्त्तव्य भूल जाते हैं जिससे जीवन में कलह/तनाव उत्पन्न होते हैं अतः इस बात का ध्यान रखें कि 'अधिकार कर्त्तव्यों की थैली में प्राप्त होते हैं।' यदि हम अपने कर्त्तव्यों का पालन करेंगे तो अधिकार भी अवश्य ही प्राप्त होंगे।

माता-पिता के कर्त्तव्य

माता-पिता के लिए अपनी संतान का विवाह अत्यधिक प्रसन्नता का कारण होता है, इसके पीछे उनकी चिरसंचित भावनायें/कामनायें छुपी हुई होती हैं, 'संतान के विवाह' के अवसर पर प्रसन्न होना उनका अधिकार है, पर उनके कुछ कर्त्तव्य भी हैं। उन कर्त्तव्यों की पालना पूर्वक ही प्रसन्नता को स्थायित्व दिया जा सकता है।

अपनी संतान के 'मंगल-परिणय' के पूर्व प्रत्येक माता-पिता का कर्तव्य है कि उनको लौकिक दृष्टि से तो योग्य बनायें ही परन्तु 'जैनत्व' के संस्कारों से भी संस्कारित करें। कहा भी जाता है - ''संतान को संपत्ति नहीं संस्कार दीजिये'', ''संतान को

कार नहीं संस्कार दीजिये'' और ''संस्कार बिना की सुविधायें पतन का कारण हैं।''

बेटी को वस्त्राभूषण कितने भी दें, परन्तु सबसे पहले स्वाध्याय हेतु जिनवाणी व स्वाध्याय करने की प्रेरणा अवश्य दें। श्रावकाचार के अनुसार षडावश्यकों को पालने के संस्कार अवश्य ही दें।

बेटी शिक्षा में कितनी भी योग्य हो, सुन्दर हो, कमाऊ हो फिर भी माता-पिता उसे गृहकार्य में दक्ष करें, उसमें सेवाभाव जागृत करें, अपने सास-ससुर की बात मानने, उनका आदर करने, ससुराल के अन्य सदस्यों को अपने परिवार का अंग मानकर आवश्यकतानुसार हर तरह से सहयोग करने, उस परिवार का सम्मान बढ़ाने की शिक्षा दें।

बेटे को भी ससुराल पक्ष के प्रति सद्व्यवहार बनाने, सहयोग करने व आदरभाव रखने की प्रेरणा दें।

माता-पिता का कर्त्तव्य है कि वह ससुराल में पहुँची बेटी के हर कार्य मे दखलंदाजी न करें। हर दिन वहाँ की रिपोर्ट न लेते रहें। बेटी यदि कुछ पूछे भी तो योग्य सलाह देने के बाद यह अवश्य कहें कि बेटी! आप अपने परिवार में अर्थात् सास-ससुर-जेठ आदि की भी राय लेना और वहाँ की परिस्थितियों के अनुसार कार्य करना।

हर हाथ में मोबाइल होने से आजकल सूचनाओं का आदान-प्रदान बहुत जल्दी होता है, उसमें भी गलत सूचनायें/बुराइयाँ और भी अधिक तेजी से दौड़ लगाती हैं अत: संभव है कि आपकी बेटी से किसी कारणवश ससुराल में कुछ कह दिया हो और बेटी

मोबाइल पर फटाफट आँखों देखा हाल बयान कर दे तो भी कृपया उस पर तत्काल कोई टिप्पणी न करें।

हो सकता है कुछ ही समय में परिस्थिति बदल जाये, उन्हें अपनी गलती का अवबोध हो जाये और क्षमायाचना पूर्वक पारस्परिक शांति हो जाये। हो क्या जाये, होगी ही, परन्तु हमने यदि शीघ्रता में भड़काऊ टिप्पणी कर दी, कोई गलत राय दे दी, तो निश्चित ही आपकी बेटी का परिवार बिगड़/बिखर जायेगा।

बेटी को परिवार से अलग रहने, स्वतंत्र रहने की शिक्षा न दें। वैसे ही आजकल परिवार छोटे हो रहे हैं, उसमें भी शिक्षा व व्यवसाय के कारण लोग परिवार छोड़कर दूर देश जा रहे हैं, जिससे क्षेत्र की दूरियाँ तो बढ़ ही रही हैं यदि अलग/अकेले/स्वतंत्र रहने के संस्कार दिये तो भावनाओं/मन से भी दूरियाँ हो/बढ़ जायेंगी, जो आपकी बेटी के लिए भी अच्छा नहीं होगा। सामूहिक परिवार में बीमारी, प्रसव, यात्रा व अन्य प्रतिकूलताओं में परिवार का साथ मिलता है वहीं खुशियाँ भी पूरे परिवार के साथ बांटने पर और अधिक हो जाती हैं।

सास-ससुर के कर्त्तव्य

हर परिवार में बेटी बहुत ही लाड़-प्यार के साथ पली हुई होती है। आज के वातावरण में बेटियों का समय भी अध्ययन करने में ही अधिक बीतता है और वे गृहकार्य व अन्य व्यवहारों से उसी तरह कम परिचित हो पाती हैं, जिस तरह आपके बेटा/बेटी पारिवारिक संबंधों के निर्वहन करने व गृहकार्य करने में अपरिचित हैं, अतः इस बात का ध्यान रखते हुये कि पराई बेटी

भले ही आपकी बहू है परन्तु आपकी बेटी की ही तरह है अतः यदि कोई काम न बने या जिस तरह आप 5 बजे सोकर उठ जाती थीं वह न उठ सके या कुछ नया करना चाहे या अन्य कोई प्रसंग हो तो वात्सल्यपूर्वक ही समझाने का प्रयास करें अन्यथा बहू के साथ बेटा भी आपके हाथ से चला जायेगा।

बहू के माता-पिता या अन्य परिजनों के संबंध में अपमानजनक टिप्पणी न करें। विवाह के समय कोई कमी रह गई हो, आपके अनकूल व्यवस्थायें न हो सकी हों तो उनको याद करके अपने ही 'सबसे नजदीकी' परिवार का अपमान न करें, उनके सम्मान में अपना ही सम्मान है।

बहू की किसी कमी को गली-मुहल्ले में चर्चा का विषय न बनायें अपितु जो विशेषता हो उसे सबके बीच कहें जिससे बहू का आप सबके प्रति सम्मान बढ़ेगा एवं परिवार के प्रति अपनत्व होगा।

बहू के कर्तव्य

बहू कितनी भी पढ़ी-लिखी हो, कमाऊ हो परन्तु हर सास-ससुर, जेठ-जिठानी व अन्य परिजनों की अपनी बहू/भाभी से कुछ अलग तरह की अपेक्षायें होती ही हैं, उन अपेक्षाओं को पूरा करना बहू का कर्त्तव्य है। यदि बहू अपनी शिक्षा व नौकरी आदि के बहाने परिजनों के हृदय में स्थान बनाना चाहेगी तो नहीं बना सकती। उनके हृदय में अपना स्थान शुद्ध-सात्त्विक भोजन से जो कि वात्सल्यपूर्वक परोसा गया हो, एक मधुर मुस्कान, प्रिय वाणी व आवश्यकतानुसार वैयावृत्तिपूर्वक ही बना सकती है। इसके लिए बहू को निश्चित ही कुछ अधिक परिश्रम करना

होगा, परन्तु बहू के द्वारा किये गये यह कार्य बहू को इतनी प्रसन्नता, सन्तोष देंगे जिससे कार्य की अधिकता कष्टकर नहीं लगेगी।

बहू परिवार में मात्र पति का ही ध्यान न रखे या उनकी ही प्रशंसा न करे। परिवार में देवर/ननद या जेठ आदि के बच्चे हों तो उनको भी लगना चाहिये कि बहू उनके खाने-पीने-अध्ययन या जन्मदिन आदि का ध्यान रखती है, उनके प्रति भी अपनापन है।

यदि आप ससुराल से अलग रह रहे हैं तो त्यौहार/अवकाश में मात्र पीहर जाने की ही जिद न करें। सच में तो ससुराल में अधिक समय देना चाहिये। नाना-नानी की तरह दादा-दादी भी अपने पोता-पोती और आपसे मिलने, साथ रहने का इंतजार करते हैं, अतः आने-जाने में विशेष ध्यान/संतुलन रखना चाहिये।

बहू बात-बात में अपने पीहर का यशगान न करे, हर कार्य को पापा या मम्मी से पूछती हूँ न कहे। अब आपको सही मार्गदर्शन देने के लिए यहाँ पर भी मम्मी-पापा मिल गये हैं, उनसे पूछकर काम कीजिये, परिजन प्रसन्न रहेंगे।

विवाह के बाद अब बहू का परिवार/घर ससुराल है, अतः अपने पीहर के कार्यों में दखलंदाजी न करे, अपनी भाभी की बुराई न करें। आप अपनी भाभी की बुराई करके पीहर से ही रिश्ता समाप्त कर लेंगी क्योंकि मात्र माता-पिता के कारण पीहर नहीं है, भाई-भाभी के साथ प्रेम भाव होने पर ही पीहर का आनन्द ले सकोगी। साथ ही अपनी विवाहित ननद-ननदोई को भी भरपूर प्रेम/उचित उपहार व आवश्यक सहयोग भी करना चाहिए।

एक बात और ध्यान रखें कि जो हीरो जैसा पति आपको प्राप्त

हुआ है वह आपके सास-ससुर का सबसे प्रिय उपहार है, उसकी प्रसन्नता व प्रगति के लिए उन्होंने अपने जीवन का सर्वस्व लगाया है, आपके घर आने पर उन्होंने खुशियाँ मनाई हैं अब आप ऐसा व्यवहार न करें कि जिससे उनकी आंखों में आंसू आवें।

दामाद/पति/बेटे के कर्त्तव्य

आप किसी की सेवाभावी बेटी को अपने घर में लेकर आये हैं, वह आपके परिजनों का ध्यान रखती है, सेवा करती है तो आपका भी कर्त्तव्य है कि आप पत्नी का ध्यान रखें। 'आप न्यायपूर्वक कमा कर लायें और वह विवेक पूर्वक खर्च करे तो परिवार में शांति रहेगी।'

पत्नी के कहे बिना ही आवश्यकता होने पर अपने माता-पिता को जानकारी देते हुये सास-ससुर का भी सहयोग करें। हो सकता है कि आप नौकरी कर रहे हैं व पत्नी भी कार्य करती है फिर घर आकर भी काम करती है तो योग्य कार्य में उसका सहयोग करें।

आपको पत्नी और माँ के बीच संतुलित व्यवहार करना होगा। पत्नी जहाँ अपना भरा-पूरा परिचित परिवार छोड़कर अपरिचित परिवार में आई है अतः उसका ध्यान रखना आवश्यक है वहीं माता-पिता की भी अपने बेटे की पत्नी से कुछ अपेक्षायें होती ही हैं, उनको भी कैसे पूरा किया जा सके इसके लिए पत्नी का सहयोग करें। आप अपने खान-पान में ऐसा व्यवहार न करें कि जिससे यह पता लगे कि अब आप माँ की इच्छा के विरुद्ध पत्नी की इच्छानुसार चलने लगे हैं।

माता-पिता के समक्ष उनकी इच्छा के विरुद्ध ससुराल का पक्ष न लें। यदि आप सही हैं तो सम्मानपूर्वक उन्हें समझायें वे निश्चित ही मानेंगे क्योंकि आपकी खुशी में ही उनकी खुशी है।

ससुराल में आप सास-ससुर को मम्मी-पापा कहेंगे और वे आपका आदर/इंतजार/मनुहार करेंगे, उपहार देंगे, आपसे पूछ कर काम करेंगे, इस प्रकार की अपेक्षा भूलकर भी अपने माता-पिता से न करें, न ही उनसे तुलना करें। आपके माता-पिता तो अभी भी आपको डांट सकते हैं, कोई काम करने को मना कर सकते हैं, भोजन आदि के लिए मनायेंगे नहीं तो भी इनका प्रेम किसी भी तरह कम नहीं है, अतः दोनों 'मम्मी-पापा' के प्रति व्यवहार में सावधानी रखना चाहिये।

आपके व्यवहार से पत्नी को ऐसा न लगे कि उसका ध्यान नहीं रखा जा रहा, उसका सम्मान नहीं है और न ही ऐसा हो कि माँ को लगे कि मेरा बेटा अब पत्नी का हो गया। पत्नी की इच्छाओं को पूरा करें तो परिवार की मर्यादाओं का भी ध्यान रखें। आप दोनों ने जो फेरे लेते समय सात वचनों को मानने का संकल्प लिया है उसको भी याद रखें।

नवविवाहित दम्पत्ति के कर्त्तव्य

नवदम्पत्ति को एक-दूसरे की भावनाओं/इच्छाओं का ध्यान रखना चाहिए, सम्मान पाने के लिए परस्पर सम्मान देना भी चाहिए, दोनों के ही ससुराल पक्ष के परिजनों से परस्पर में समरसता का व्यवहार करना चाहिए।

पारस्परिक कर्त्तव्यों के संबंध में डॉ. स्वर्णलता जैन लिखती

हैं - "ट्रस्ट (परस्पर विश्वास), टाइम (परस्पर साथ-साथ समय बिताएँ), टॉकिंग (किसी भी परिस्थिति में बातचीत का व्यवहार बन्द न होने दें) और टच (एक-दूसरे की भावनाओं का ध्यान रखें) - इन चार (4T) पर आधारित जीवन-व्यवहार को अपनाएँ।"

आपका परिणय निश्चित ही मंगल-परिणय होगा।

यदि हम उक्त तथ्यों पर ध्यान रखते हुये अपने पुत्र-पुत्री का परिणय कराते हैं तो निश्चित ही वह 'मंगल-परिणय' होगा। हम इस जीवन में अपने 'जीवन-साथी' के साथ 'मुक्ति-सुन्दरी' से परिणय करने की दिशा में बढ़ सकें तो यह परिणय भी मंगलकारी कहा जायेगा। ❍

आत्मार्थी परिवार कैसा हो ?

देव-शास्त्र-गुरु का श्रद्धानी, स्वाध्याय से भी हो प्रेम।
वृद्धजनों की सेवा-आदर, करना जिनका होवे नेम।।
प्रात:काल मिलें जब परिजन, 'जय जिनेन्द्र' ही वे बोलें।
भजन, गीत, संगीत चलाकर, भक्तिरस को जो घोलें।।
परिजनों से साधर्मीवत्, वात्सल्य का हो व्यवहार।
करें प्रशंसा इक दूजे की, सबसे मृदुमय हो व्यवहार।।
न्याय-नीति से पति कमाकर, जब भी निजघर में आवे।
शुद्ध-सात्त्विक भोजन पत्नी, वात्सल्य युत करवावे।।
अन्याय-अनीति अरु अभक्ष्य के, साथ तजें जो तीन मकार।
हो सहयोग सरलता सम, संतोष समन्वय पंच सकार।।
जुबां और जीवन सुधर्ममय, ऐसा आत्मार्थी परिवार।
आत्मार्थी तो रहे चैन से, सुख-शान्ति पावे परिवार।।

परिशिष्ट

जैन संस्कृति संरक्षण

इस इक्कीसवीं सदी में संचार संसाधनों/प्रसाधनों/शिक्षा/व्यापार/परिवार/विचार आदि समस्त क्षेत्रों में इतनी तीव्रता से परिवर्तन/परिवर्धन हो रहा है कि जो उस दौड़ में दौड़ नहीं पा रहा वह पिछड़ ही नहीं रहा बल्कि भीड़ द्वारा कुचला जा रहा है।

परिवर्तन/ परिवर्धन की दौड़ में सबसे अधिक नुकसान हो रहा है तो 'जैन संस्कृति' को।

भौतिक उपलब्धियों की दौड़ में हम अपनी अहिंसक/वैज्ञानिक संस्कृति से दूर होकर देव दर्शन-पूजन/स्वाध्याय/रात्रि-भोजन त्याग/छानकर पानी पीना जैसे श्रावकों के चिह्न माने जाने वाली क्रियाओं को भी भूल गये। युवा-युवती कैसे भी और कहीं भी पद-पैसा-प्रतिष्ठा की प्राप्ति हेतु 'जैनत्व' के संस्कार छोड़कर भागने लगे हैं।

फलस्वरूप -

1. स्व-पर हितकर स्वाध्याय में कमी होने से बाहर में दान आदि की प्रवृत्ति व धर्मायतन के निर्माण होते हुए भी जैन सिद्धान्तों के ज्ञान व पारस्परिक वात्सल्य में कमी हो रही है।

2. धार्मिक विचार/सर्वज्ञ की श्रद्धा न होने से परिवार में अशान्ति बढ़ रही है।

3. खाने-पीने का भेद मिटने से विधर्मी संग वैवाहिक संबंध हो रहे हैं।

4. श्रावकाचार के चिह्न ही न होने तथा विजातीय (विधर्मी) वैवाहिक संबंध होने से जैन समाज की जनसंख्या में कमी हो रही है।

5. युवा-युवतियों में शील के प्रति सावधानी न होने से दुराचार में वृद्धि हो रही है।

6. परिवार में सात्त्विक/धार्मिक वातावरण न होने से अभक्ष्य सेवन में वृद्धि हो रही है।

7. मात्र भौतिक सुख की चाह में परिवार से दूरी बढ़ रही है।

8. प्रदर्शन/दिखावा में व्यय अधिक होने से आय बढ़ाने के लिए कुछ भी करने को तैयार हो रहे हैं।

9. आर्थिक दृष्टि होने से पति-पत्नी दोनों का ही काम करना आवश्यक हो रहा है, जिससे तनाव/कलह/ईर्ष्या बढ़ रही है।

10. जब पति-पत्नी दोनों ही राजा-रानी, तो फिर कौन भरे पानी की समस्या अतः निरन्तर की तकरार बढ़ रही है।

इत्यादि अनेक दुष्परिणाम सामने आने लगे हैं।

इन परिणामों को देखकर विचारक व समाज का नेतृत्व विस्मित/दिग्भ्रमित हो रहा है। परिवार से भागकर विवाह करना, तलाक होना आदि देखकर दुखी सब हैं, कुछ न कुछ कह और कर भी रहे हैं। करना भी चाहिये। उसी क्रम में हमारे विचार प्रस्तुत हैं, जिन्हें आप विचारणीय अवश्य समझें।

संस्कृति संरक्षण हेतु उपाय -

1. प्रत्येक परिवार के वरिष्ठ सदस्य को स्वाध्याय करके जैन संस्कृति का ज्ञान स्वयं करना चाहिये।

2. जैन तत्त्वज्ञान व श्रावकाचार के प्रचार-प्रसार हेतु पाठशालाओं/शिविरों/छात्रावासों/जैन विद्यालयों का संचालन करते हुए अपनी संतान को वहाँ पढ़ने हेतु भेजना चाहिये।

3. हमें हर स्तर के (साधारण से लेकर वातानुकूलित तक) छात्रावास अलग-अलग स्थानों पर निःशुल्क/सशुल्क खोलना चाहिये।

4. बड़े शहरों में उच्च लौकिक शिक्षा हेतु आये छात्रों को देव दर्शन तथा शुद्ध/सात्त्विक भोजन मिल सके ऐसी व्यवस्था करना चाहिये।

5. आज के युग में युवा-युवतियों का पारस्परिक मिलना या इंटरनेट के प्रयोग को सर्वथा रोका जा सकना संभव नहीं है न ही संभवतः उचित अतः अभिभावक स्वयं तथा धार्मिक शिक्षक सावधानियों के प्रति सजग करें।

6. हम युवा-युवतियों के व्यवहार के प्रति न तो अत्यधिक विश्वास करें, न ही अविश्वास।

7. सामान्यतया शुद्ध बड़ी/पापड़/नमकीन/मिष्टान्न आदि उपलब्ध करवाने हेतु सामाजिक संगठन हर नगर में प्रयास करें।

8. जो रेस्टोरेन्ट के व्यवसाय से जुड़े हुए हों वे जमींकन्द आदि से रहित दिन में खाद्य सामग्री उपलब्ध करायें। जितनी शुद्धता हो, उसकी सभी को सही-सही सूचना भी अवश्य दें।

9. अपनी संतान को 'लौकिक उपलब्धि ही सब कुछ है' इस मानसिकता से दूर रखें।

10. अपने द्वारा काल्पनिक लक्ष्य को प्राप्त करना ही इस मनुष्य जीवन का उद्देश्य नहीं है, इस बात का निर्णय करें/करायें।

11. मात्र लड़के को कोई लड़की या लड़की को कोई लड़का ही प्यार नहीं करता जो उनके लिए ही घर/धर्म/परिवार/जीवन त्याग कर दिया जाये। उन लड़के/लड़की के लिए माता-पिता, भाई-बहिन, दादा-दादी आदि भी बेहद प्यार करते हैं, इसका भी ज्ञान कराया जाये।

12. मात्र स्वयं के लिए न जियें। देश/समाज/परिवार के प्रति भी कर्त्तव्यबोध हो।

13. समाज में मतभेद होते हुए भी मनभेद न बढ़ायें। सामाजिक समरसता बनी रहे इसका ध्यान रखें।

14. प्री वैंडिंग/सामूहिक रात्रि-भोजन जैसे कार्यक्रम न स्वयं करें न करने वालों की प्रशंसा करें।

15. सड़कों/मंचों पर युवा-युवतियों के फिल्मों के फूहड़ गानों पर नृत्य करने का निषेध करें।

यह सब भावनायें आत्महितकारी, सर्वज्ञ कथित, मुनिराजों/ विद्वज्जनों द्वारा लिखित वीतरागता के पोषक शास्त्रों के स्वाध्याय से ही बन सकती हैं अतः 'स्वाध्यायः परमं तपः' मानते हुए अवश्य ही स्वाध्याय करें।

अन्य जो भी उपाय संभव हों वह करें। सकारात्मक छोटे से उपाय/ प्रयास की प्रशंसा करें। निंदा न करें। मजाक न बनायें। ❍

तत्त्वविचार

दुर्लभ नर भव पाकर चेतन किया न तूने तत्त्व विचार।
तू है कौन? कहाँ से आया? कैसे चलता यह व्यापार?

गोरा, काला, शरीर मिला क्यों ? क्यों पाया ऐसा परिवार।
कोई सुन्दर, कोई असुन्दर, दुःख-सुख का ना पारावार।।

सभी चाहते नित प्रति सुख हैं, पर सुख को वे नहीं पाते।
अजर-अमर मैं रहूँ सदा ही, पर इक क्षण में मर जाते।

मोही होकर जिनको पोषे, वे देते हैं साथ नहीं।
करे परिश्रम दिवस-निशि तू, पर लगता कुछ हाथ नहीं।।

यश चाहे पर अपयश मिलता, स्वास्थ चहे पर होवे रोग।
माल भरा है गोदामों में, कर नहीं पावे उनका भोग।

तेरे करने से कुछ हो तो, करले तू इक काला बाल।
बाल भी काला कर ना पाये, अब तो बदलो अपनी चाल।।

होते हुए काम को जानो, कुछ भी नहीं तेरे आधीन।
तेरे वश से कुछ नहीं होता, होता है सब कर्माधीन।

तू है चेतन, तन है अचेतन, है स्वतंत्र सारा परिवार।
हो स्वतंत्र परिणमन सभी का, कर लो चेतन तत्त्व विचार।।

आध्यात्मिक सत्पुरुष श्री कानजी स्वामी के पुण्य प्रभावना योग में स्थापित तत्व प्रचार-प्रसार केन्द्र एवं भव्य जिनालय
विद्यार्थीगृह, सोनगढ़
रत्नत्रय तीर्थ ध्रुवधाम, बांसवाड़ा
श्री टोडरमल जैन सिद्धान्त महा विद्यालय, जयपुर
श्री दिगम्बर जैन सिद्धान्त महाविद्यालय, कोटा
आत्मार्थी कन्या विद्या निकेतन, घेवरा मोड़, दिल्ली
शाश्वत धाम, उदयपुर
चैतन्यधाम, अहमदाबाद